Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

पुरुष परीक्षा में राजनैतिक तत्व

डॉ.विभाष चन्द्र
प्रशिक्षित स्नातक शिक्षिक
केन्द्रीय विद्यालय क्रम सं.- 2, गया

शोध आलेख सार– पुरूष परीक्षा में निहित राजनीति–परक तत्वों का अंगीकार आज के राजनेताओं के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। आज राजनीतिक संक्रमण का यही कारण स्पष्ट होता है कि हमने अपने अमूल्य उक्त नीति निर्धारकों के तत्वों को भुला दिया है।

मुख्य शब्द– पुरूष, परीक्षा, राजनीति–परक, तत्वों, नीति, निर्धारक।

मानव चिरंतन से अनुकरण शील प्राणी रहा है। वह जो कुछ भी सुनता है उसी से प्रभावित होता हुआ अपने पथ पर बढ़ता है। महाकवि विद्यापति भी उसी पथ के एक अनुपम राही हैं जिनका काल स्वर्ण युग माना गया है।

महाकवि विद्यापति बहुभाषी एवं राज्याश्रयी महाकवि थे। राज्याश्रयी होने के कारण राजहित में उन्होंने पुरूष परीक्षा नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया । विद्यापति की धारणा थी कि पुरूष वही है जिनमें धीरता, वीरता, बुद्धि और विद्या हो और साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को पुरूषार्थ हेतु सिद्ध करने वाला हो।

पुरुष परीक्षा चार परिच्छेद में विभक्त है:– प्रथम परिच्छेद में वीर कथा, द्वितीय परिच्छेद सुबुद्धिकथा, तृतीय परिच्छेद में सुविद्यकथा और चतुर्थ परिच्छेद में पुरुषार्थ कथा वर्णित है। ग्रन्थकार का लक्ष्य पुरुषों का लक्ष्य प्रतिपादन करते हुए ये फलित उद्देश्य है– नवमति बालक को नीति का परिचय देना, रस युक्त नागरिक का उदाहरण और स्पष्टीकरण तथा मनोरंजन, राजनीतिक जटिलता और वाग्विदग्धता को गुणशाली बनाना।

यहाँ मेरा अभिधेय राजनीतिक परिदृश्य को उजागर करना है।
राजा के यह पूछने पर कि कन्या किसे दें। कवि का कहना है पुरुष को –

वीरः सुधीः सुविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान्।

तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छवर्जिताः ॥

विद्यापति का काल संघर्ष का था। पुरुषार्थ का अभाव हो रहा था। सत्य की बलिवेदी पर मर मिटने वाले की संख्या सदा ही कम रहती है। इसी परिप्रेक्ष्य में पुरुष–परीक्षा में राजीतिक चेतना को जागृत किया है ।

'क्रांति की लपटें जब फैलती हैं तो वीर बांकुरे ही दृष्टिगोचर होते हैं।''

विद्यापति का युग क्रांति का युग था। सत्ता के लिए छिना-झपटी हो रही थी। आदर्श चरित का अभाव सा हो गया था और राज्य अधोगति को प्राप्त हो रहा था। विद्यापति ने राज्य को इस गति से उबारने की कोशिश की। जिसके लिए उन्होंने शास्त्रविधा, लोकविधा, वेदविधा, उभयविधा, गीतविधा, नृत्यविधा, पूजितविधा आदि कथाओं का सहारा लिया।

महाकवि विद्यापति राजाओं में आलस्य को त्यागने और राजनीतिक चेतना जगाने के लिए कहते हैं कि -

"कातरः शूरतां याति क्रियावानलसो भवेत् ।

युद्धवीरकथां श्रुत्वा जयमाप्नोति साम्प्रतम् ।।''

अर्थात् युद्धवीर की कथा को सुनकर डरपोक भी क्रियावान बन जाता है, आलस्य रहित हो जाता है। और यदि राजा सुन ले तो वह विजय को प्राप्त करता है। परिच्छेद के प्रथम श्लोक में ही कवि के इस उद्गार से कर्णाटकुलोत्पन्न नृपति नान्यदेव के पुत्र मल्लदेव पुरुषार्थ के लिए प्रेरित हो जाते हैं। वे कहते हैं कि मैं युवराज होकर भी पिताजी के द्वारा उपार्जित राज्य से सुख का अनुभव करता हूँ। अतः यह मेरा पुरुषार्थ नहीं है। क्योंकि कहा गया है- "सिंह और सत्पुरुष अपने पराक्रम से ही जीते हैं, और आलसी, बच्चे तथा स्त्रियाँ दूसरे के आश्रय पर जीते हैं। पिता अपने को तभी भाग्यशाली मानता है जब उसके पुत्र द्वारा अर्जित धन और गुण से जन जीवन खुशहाल हो। कुमार मलदेव भी ऐसी भावनाओं को धारण कर काशी नरेश के सानिध्य में रहकर सम्मान का अनुभव करने लगा। लेकिन कहा गया है कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत।' कुमार मल्लदेव के साथ यही हुआ। इस पर कवि विद्यापति ने कहा है-

"आदरः सुलभो राज्ञां वस्तुन्यल्पगुणेऽपि च ।

प्रगुणेऽपि च सम्प्राप्ते भवेन्नूनमनादरः ।।''

कुमार मल्लदेव के अन्यत्र जाने के लिए उद्यत होते देख राजा ने कहा तुम कहाँ जाओगे। मल्लदेव कहते हैं हम लोगों का राजकीय समादर शूरता मुलक हुआ करता है । जो युद्ध द्वारा ही संभव है "महाराज राज्य का फल विजय सुख है और बिना युद्ध के विजय कहाँ? विजय नहीं तो सुख कहाँ अर्थात् महाकवि विद्यापति ने राजाओं के सुख और सम्मान में एक के लिए युद्ध को अनिवार्य बताया है।

महाकवि विद्यापति ने भी युद्ध के समय संधि के महत्व को रेखांकित किया है। काशी नरेश के आक्रमण पर मंत्रीगण महाराज को संधि करने की सलाह देते हैं। पर आगे वे कहते हैं कि शूर वीर अपने कर्तव्य कर्म में परामर्श की प्रतीक्षा नहीं करता।

संग्राम में अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए जो मनुष्य भाग जाते हैं उनकी मृत्यु निश्चित है। वे तत्काल अपनी कृपणता दिखलाते हैं। और यही कार्पण्य उन्हें निर्बल बना देता है –

'प्राणत्राणाय संग्रामात् पलायन्तेऽपि ये नराः।
मृत्युरावश्यकस्तेषां कार्पण्यमतिरिच्यते।।''

लोकविधा कथा में बिना विद्या के भी व्यक्ति लौकिक कार्यो में निपुण हो सकते हैं। शकटार नाम का मंत्री इसीतरह का है। उसके परिवार की हत्या हो गई है। तत्पश्चात् उसे मंत्री का पद मिलता है। इस पर वे आश्चर्य करते हुए कहते हैं– यह जड़ को उखाड़ कर पत्ते को सींचने की बात है। इसलिए कहा गया है– जो पहले उत्कट बैर उत्पन्न कर मित्रता की इच्छा रखता हो, वह व्यक्ति यमपुर की यात्रा – करने के लिए बाट जोहता है –

"उत्कटं वैरमुत्पाद्य पुनः सौहृदमिच्छति।
यमपत्तनयात्रायाः स पन्थानमवेक्षते।''

पुनः शकटार आगे कहते हैं जिसका शत्रुता पूर्ण कार्य पराकाष्ठा तक देखा गया हो, उस पर भी यदि कोई को व्यक्ति विश्वास करता है तो समझना चाहिए कि मृत्यु उसका माथा सूँघ रही है । इसलिए वे उचित–अनुचित का विचार कर सन्देह में पड़ जाता है। वह पुनः प्रतिज्ञा करता है कि जब तक इस दुष्ट आत्मा राजा का अंत नहीं करेंगे चैन की सांस नहीं लेंगे। विद्यापति इस बैर भाव के संबंध में कहते हैं कि बैर का प्रतिशोध अवश्य लेना चाहिए। क्योंकि नीच पुरुष कहलाने का अवसर नहीं मिलता। अर्थात् महाकवि विद्यापति के इसी उत्साह वर्द्धन पर मल्लदेव विनम्र होकर कहता है – हे दिक्पालों, मुनियों, देवसिद्धों, देवताओं, आकाश में विचरण करनेवाले सभी लोग साक्षी होकर इस युद्ध कौतुक को देखें। मनुष्यों के मांसों से राक्षसगण तृप्त हो, अप्सराएँ वीरों को प्राप्ति के प्रेम से प्रसन्नता को प्राप्त करें और देखें कि रणक्षेत्र तरु अकेला ही श्री मल्लदेव दूसरी ओर अनेक वीरों के साथ साहस दिखला रहा है –

'दिक्पालाः कृतिसाक्षिणश्च मुनयः सिद्धाः सुराः खेचराः
सर्वे पश्यत कौतुकं नृपिशितै रक्षोगणस्तृप्यतु ।
मोदं चाप्सरसः प्रयान्तु सहसा वीरानुरागात्सवा
एकः साहसमातनोति बहुभिः श्रीमल्लदेवो रणे ।।

राजा के लिए महाकवि विद्यापति ने गीत–विद्य होना आवश्यक माना है, क्योंकि गीत–विद्य राजा ही कान और हृदय से युक्त पशुओं को परितुष्ट करता है। राजा को हास्य विनोदी भी होना चाहिए। हास्य से क्रोध का समन होता है। जबतक क्रोध का समन नहीं होता तब तक राज्यकार्य हेतु उचित निर्णय संभव नहीं होता। हास्य–विनोद के कारण ही अधम चोर मृत्युबंधना को काट राजा का प्रिय पात्र बन जाता है। अंत में महाकवि कहते हैं वीर बद्धि से रहित भय और सुबुद्धि

वीरता से वंचित रहकर तथा विद्यावान बुद्धि और वीरता दोनों से रहित होकर वह पूंछ हीन मनुष्य होता है। आश्रयी कवि होने के कारण विद्यापति नारायण अथवा रूपनारायण (शिवसिंह) दोनों लक्ष्मीपति थे। सब लोकों में सुन्दर थे। चन्द्रमा के समान मुखमण्डल था। मेघ के समान श्याम वर्ण था। वहीं दोनों पुरुष थे और वही राजनेता।

नीतिकार के रूप में विद्यापति अपने समय के ही मानक नहीं हैं, अपितु वे आज भी मील के पत्थर बने हुए हैं। दोनों नीतिकारों में पञ्चतंत्रकार और विद्यापति में राजनीति संबंधी नीतियों में साम्य है। लेकिन दोनों में वैषम्य भी देखने मिलता है। पञ्चतंत्रकार का राजनीतिक पात्र मनुष्य और जानवर दानों है। विद्यापति में एकाध प्रसंग को छोड़कर इनके राजनीति पात्र मनुष्य ही हैं। पञ्चतंत्रकार ने जीव-जन्तुओं में राजनीतिक चेतना को उपस्थापित कर मानवता का प्रत्यारोपण किया है। विद्यापति ऐसा नहीं कर सके हैं। विद्यापति के राजनीतिक पात्र देशहित में लड़ते हुए अपने प्राणों को न्योछावर कर देते हैं। पञ्चतंत्रकार के पात्र को यह भिडन्त नहीं होता। पञ्चतंत्रकार के राजनीतिक पात्र प्राचीन भारत के पात्र हैं, जबकि विद्यापति के राजनीतिक पात्र संक्रमण कालीन आधुनिक युग के पात्र हैं। जहाँ यवनों का आधिपत्य था।

पञ्चतंत्रकार के पात्र उस रूप में उद्यत नहीं है, जिस रूप में विद्यापति के। पञ्चतंत्रकार के पात्रों पर महाभारत कालीन परिवेश का प्रभाव पूर्णत: झलकता है, जबकि विद्यापति के पात्रों पर आधुनिकता का।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि पुरूष परीक्षा में निहित राजनीति-परक तत्वों का अंगीकार आज के राजनेताओं के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। आज राजनीतिक संक्रमण का यही कारण स्पष्ट होता है कि हमने अपने अमूल्य उक्त नीति निर्धारकों के तत्वों को भुला दिया है।

स्रोत ग्रंथ सूची : -

1. पञ्चतन्त्र एवं पुरूष-परीक्षा का तुलनात्मक अधययन- डॉ राम पवित्र राय
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास- वाचस्पति गैरोला
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास- बलदेव उपाध्याय
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास- वचनदेव कुमार
5. पुरूष-परीक्षा- विद्यापति
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं. डॉ. नगेन्द्र